टिप्पणियो का महायुद्ध

पिछले कुछ वर्षो से न्यायपालिका कुछ ज्यादा ही बढचढकर टिप्पणियां करने लगी है। वैसे पुलिस वालो के विरूद्ध निचली अदालत के जज से लेकर सर्वोच्च अदालत तक पुलिस को एक खिलौना समझकर जब मन चाहे तभी अपने मन की भडास निकालते रहते है किन्तु पिछले दो चार वर्षो से उच्च या सर्वोच्च अदालतो ने लोकतंत्र के अन्य दो स्तंभो विधायिका तथा कार्यपालिका के विरूद्ध भी अपनी मौखिक टिप्पणियां बढा दी हैं। ऐसी ही एक टिप्पणी पिछले दिनो सर्वोच्च अदालत ने सी बी आई की तुलना सरकार के पिजंरे मे कैद तोते से करके अपनी सारी लोकतांत्रिक मर्यादाओ की सीमाओं का अतिक्रमण कर दिया । यद्यपि सी बी आई को स्वतंत्र होना भी चाहिये और न्यायालय की टिप्पणी गलत भी नही है किन्तु न्यायालय को इस प्रकार की टिप्पणिया करने का कोई उचित आधार नही है। चतुर सुजान दिग्विजय सिंह तो प्रतीक्षा मे थे ही। उन्होने सर्वोच्च न्यायालय की इस मौखिक टिप्पणी को आधार बनाकर सर्वोच्च न्यायालय के विरूद्ध एक वैचारिक बहस छेड दी। अब तक किसी भी व्यक्ति ने दिग्विजय जी के पक्ष मे खुलकर कोई बयान नही दिया किन्तु आतंरिक चर्चाओ मे हर पढा लिखा आदमी दिग्विजय जी की बात से सहमत दिखता है और ऐसे ही सहमत लोगो मे मै भी एक हूँ।

भारत का हर व्यक्ति जानता है कि पण्डित नेहरू अर्ध तानाशाही प्रवृत्ति के थे । गांधी उनकी प्रवृत्ति के सबसे बडे बाधक थे तथा राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश गांधी विचारो के समर्थक । गांधी जी के मरते ही पण्डित नेहरू ने समाजवाद का मुखौटा लगाकर लोकतंत्र को कमजोर करना शुरू कर दिया। लोकतंत्र मे विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका एक दूसरे के पूरक भी होते है, और नियंत्रक भी। तीनो के अधिकार   भी बराबर होते है तथा सीमाएं भी। लोकतंत्र की तीनो इकाइयो मे से कोई एक सर्वोच्च होने की बात सोच भी नही सकती। नेहरू जी ने कार्यपालिका प्रमुख राष्ट्रपति को सम्बंधो के आधार पर पूरी तरह पंगु कर दिया जिससे कार्यपालिका अब तक नही उबर सकी है। नेहरू जी ने समय समय पर न्यायपालिका के भी पंख कतरे तथा शीघ्र ही संसद सर्वोच्च का नारा घोषित कर दिया। पण्डित नेहरू ने न्यायपालिका को इस सीमा तक कमजोर किया कि संसद सर्वोच्च की बात स्थापित होती चली गई। लोकतंत्र की दुहाई देकर लोकतंत्र को कमजोर करते जाने का खेल नेहरू जी से शुरू हुआ था तथा लगभग पचास वर्षो तक निर्विघ्न चलता रहा।

पण्डित नेहरू के व्यक्तित्व के समक्ष अन्य इकाइयां कमजोर पडी। न्यायपालिका ने भी सिर झुकाना ही ठीक समझा। लेकिन न्यायपालिका अन्दर अन्दर लोकतंत्र के ऐसे सुनियोजित कमजोरीकरण से बहुत दुखी थी। न्यायपालिका ने केशवानंद भारती केश मे सिर्फ एक के बहुमत से संसद सर्वोच्च के नारे पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। न्यायालय का निर्णय पूरी तरह न्यायसंगत लोकतांत्रिक होते हुए भी संविधान संम्मत नही था। भारत की जनता को न्याय और संविधान मे से एक का पक्ष लेना था। राजनेताओ से भारत की जनता सक्त नफरत करती थी, जिसका लाभ भी न्यायपालिका को मिला। तत्काल ही नेहरू जी की तानाशाह वारिस इन्दिरा जी ने न्यायालय के निर्णय को बदलवाने की सारी तिकडमे की किन्तु सफल न हो सकी। न्यायालय का निर्णय आज भी लोकतंत्र के लिये मील का पत्थर बना हुआ है। स्पष्ट है कि केशवानंद भारती प्रकरण लोकतंत्र का ऐसा मोड है जिसने भारत मे लोकतंत्र की सुरक्षा की अन्यथा यदि तेरह मे से एक भी जज इधर से उधर हो गया होता तो फिर भारत मे लोकतंत्र का क्या रूप होता अथवा भारत मे लोकतंत्र की सुरक्षा के लिये किनको क्या क्या कुर्बानिया देनी पडती यह सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है। भारत की नयायपालिका इसके लिये बधाई की पात्र है।

इस ऐतिहासिक संशोधन के बाद भी भारतीय विधायिका की अकड कम नही हुई । न्यायपालिका ने जनहित याचिका स्वीकार करने का कदम उठाकर विधायिका पर दुबारा चोट की। भारतीय संविधान मे न्यायपालिका और विधायिका की स्पष्ट सीमाएं है। न्यायपालिका Justice according to law की सीमाओ मे रहकर ही न्याय कर सकती है। तो विधायिका Law accourding to justice की सीमाओ मे रहकर ही न्याय को परिभाषित करती है। विधायिका न्याय को परिभाषित करके तदनुसार कानून बनाती है और न्यायपालिका उक्त कानून कें अनुसार न्याय को लागू कराती है। जब विधायिका ने बुरी नियत से कानून बनाना शुरू किया तथा न्याय और कानून के बीच दूरी बढने लगी तब न्यायपालिका ने जनहित को परिभाषित करना शुरू किया । न्यायपालिका का यह प्रयास विधायिका की सीमाओ का अतिक्रमण होते हुए भी विधायिका कुछ नही कर सकी क्योकि उसे जन समर्थन प्राप्त नही था। न्यायपालिका को विधायिका पर नकेल कसने के लिये भरपूर समर्थन और सम्मान मिला।

भारत की राजनैतिक स्थितियों मे बदलाव आया और भारतीय लोकतंत्र नेहरूवादी अर्धतानाशाही से पीछे हटने लगा। वैसे तो यह प्रक्रिया नरसिंह राव जी से दिखने लगी थी किन्तु अब मनमोहन सिंह के कार्यकाल मे ज्यादा साफ हुई है। अब संसद अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नही कर रही। न्यायपालिका पूरी तरह स्वतंत्र और सक्रिय है। चुनाव आयोग तथा सी ए जी तक शक्तिशाली हो रहे है। मजबूत प्रधानमंत्री की जगह पर कमजोर प्रधानमंत्री की लोकतांत्रिक प्रणाली विकसित हो रही है। संसद सर्वोच्च के नारे कम ही सुनाई दे रहे है। अच्छा होता यदि न्यायपालिका विधायिका के इस कदम का स्वागत करती किन्तु न्यायपालिका भूल गई कि अल्पकाल के लिये न्याय और जनहित को परिभाषित करने को जो काम वह कर रही है वह वास्तव मे तो विधायिका का ही काम है, न्यायपालिका का नहीं। न्यायपालिका ने सक्रिय होकर अतिक्रमणकारी विधायिका को खदेडा वह एक अच्छा काम रहा। यदि इस क्रम मे आंशिक रूप से न्यायपालिका द्वारा अतिक्रमण भी हुआ तो स्वाभाविक है किन्तु विधायिका की बदनामी का लाभ उठाकर न्यायपालिका स्वयं को सर्वोच्च बनने या दिखने की तिकडम करे यह ठीक नहीं । न्यायपालिका ने कुछ पुलिस वालो पर टिप्पणी की वह एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी किन्तु कुछ न्यायाधीश पुलिस विभाग पर ही टिप्पणिया करने लगे यह करते करते वे विधायिका को भी लपेटने लग जावे तो यह उसका अतिक्रमण है । न्यायपालिका ऐसा संदेश देने की कोशिश कर रही है कि विधायिका द्वारा अपना काम ठीक से न करने के कारण न्यायिक सक्रियता आवश्यक है। प्रश्न उठता है कि यदि न्यायालय अपना काम ठीक से न कर सके अथवा उनकी नीयत खराब हो जावे तब उसकी समीक्षा कौन करेगा? कैसे करेगा? दिग्विजय सिंह जी के इस प्रश्न का न्यायाधीशो के पास क्या उत्तर है कि न्यायाधीश यदि न्यायालय मे किसी पक्षकार के विरूद्ध अलिखित अवांछित टिप्पणी कर दे और ऐसा करते न्यायाधीशो की आम आदत बन जावे तो पक्षकार किसे सुनावे? यदि न्यायपालिका अपना काम छोडकर अन्य काम करने लगे तो उससे पिछडने वाले कार्य कौन करेगा? यदि प्रधानमंत्री किसी विषय पर तीन माह मे निर्णय न करे या राष्ट्रपति दया याचिका समय सीमा मे न निपटावे तो न्यायपालिका दोनो के लिये समय सीमा बना सकती है, तो प्रश्न उठता है कि न्यायालय यदि अपना काम समय सीमा मे न करे तो उससे स्पष्टीकरण कौन मांग सकता है ? दिग्विजय सिंह जी ने बहुत डरतें डरते contempt के डर से सिर्फ इशारा ही किया है अन्यथा प्रश्न तो यह भी होना चाहिये कि न्यायपालिका न्यायिक आदेश के लिये तो पूर्ण स्वतंत्र है किन्तु प्रशासनिक आदेश की उसकी असीमित स्वतंत्रता है या उसकी कोई सीमा है? और यदि सीमा है तो ऐसे प्रशासनिक आदेशो की समीक्षा कौन कर सकता है? प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति या कोई और? अब तक तो सिर्फ न्यायाधीशो द्वारा की गई मौखिक टिप्पणियो पर ही सवाल उठे है। यदि आवश्यकता हुई तो इससे आगे बढ कर भी सवाल उठ सकते है।

संसद सर्वोच्च का विधायिका का घमंड उसे यहां तक कमजोर कर बैठा कि न्यायपालिका को पहल करनी पडी। अब न्यायपालिका सर्वोच्च का घमंड भी उसे नुकसान करेगा। अब तक भी विधायिका का कलंक नही छूटा हैं। यही कारण है कि न्यायपालिका द्वारा की गई किसी भी पहल को जन समर्थन मिलता है। किन्तु धीरे

धीरे न्यायपालिका की टिप्पणियो की भी चर्चा शुरू हो गई है। दिग्विजय सिंह जी सरीखे बदनाम व्यक्ति के उक्त कथन को भी अपार गुप्त समर्थन न्यायपालिका के लिये स्पष्ट संकेत है, कि न्यायपालिका को प्रतिष्ठा दिलाने मे पूर्व मे जिन न्यायाधीशो ने भारी खतरे उठाये थे वह सम्मान अब कुछ लोंगों के बडबोले पन के कारण नुकसान मे न चला जावे यह सोचना वर्तमान न्यायाधीशो का काम है। न्यायपालिका ने पूर्व के टकराव मे कोई ऐंसी उल्लेखनीय ख्याति अर्जित नही कर रखी है। जो पीढियो तक आपके काम आयगी। केशवानंद भारती प्रकरण मे जो लोकतंत्र बचाने का काम किया गया है उसमे भी तो सर्वोच्च न्यायालय के छ न्यायाधिश विपरीत राय के ही थे। इसलिये कोई न्यायपालिका का सर्वसम्मत निर्णय भी कह कर सम्मानित नही किया जा सकता। इसलिये उचित होगा कि न्यायपालिका और विधायिका के लोग लोकतंत्र की वास्तविक इच्छा को समझे जिसके अनुसार न्यायपालिका से मात्र इतनी ही अपेक्षा की जाती है कि वह एक दूसरे के पूरक हो। यदि कोई एक सीमा उल्लंघन करे तो उसे नियत्रित करे अन्यथा उसकी सहायता करे। अर्थात यदि भारत का संविधान किसी व्यक्ति के प्राकृतिक न्याय अथवा मूल अधिकार के विपरीत काम करता है तो न्यायालय संविधान की समीक्षा करके उस व्यवस्था को पलट सकता है, अन्य को नही । इसी तरह संसद का कोई कानून संविधान के विपरीत बनता है तब न्यायालय ऐसे कानून को अवैध घोषित कर सकता है किन्तु न्यायालय को अधिकार नही कि वह स्वयं ही जनहित को परिभाषित करे और स्वयं ही उसे लागु करावे। उम्मीद है कि न्यायपालिका विचार करेगी।

'' उदार हिन्दुत्व को एक सफल चुनौती ''

पिछले कई दशकों से राजनीति में भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्व की अकेले पक्षधर रही है। अन्य राजनीतिक दल धर्मनिरपेक्षता के नाम पर हिन्दुत्व से दूरी बना कर रहते रहे। यहां तक कि अन्य राज्यनैतिक दल उदार हिन्दुत्व की तुलना में उग्र इस्लाम का समर्थन तक करते रहे। इस का परिणाम हुआ कि भाजपा राजनीति में कभी भी अलग–थलग नहीं पड़ी।

भारतीय जनता पार्टी में भी जहां संघ परिवार उग्रवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करता रहा वहीं अटल अडवाणी उदारवादी हिन्दुत्व का सफल नेतृत्व करते रहे। अटल–अडवाणी की जोड़ी के समक्ष संघ परिवार लाख प्रयत्न करने के बाद भी झुक जाता था क्योंकि उदारवादी अटल–अडवाणी झुकने–झुकाने की सीमाओं को अच्छी तरह समझते थे। यह बात अवश्य है कि संघ परिवार ने अटल अडवाणी की जगह किसी अन्य उदारवादी हिन्दू को भाजपा में आगे नहीं बढ़ने दिया और अटल–अडवाणी के अवकाश प्राप्ति की प्रतीक्षा करते रहे। यदि अटल बिहारी बाजपेयी और लाल कृष्ण अडवाणी की तुलना करें तो अटल जी के समक्ष अडवाणी की स्थिति एक पदलोलुप उदारवादी नेता की ही बनती है। इन्होंने बीच में पदलोलुपता के कारण अटल जी को भी कमजोर करने का प्रयास किया तथा कभी–कभी तो उन्होंने पद–प्रतिष्ठा की चाह में संघ परिवार के उग्र हिन्दुत्व से अपनी सीमा से आगे जाकर भी समझौता किया। फिर भी इतना अवश्य है कि अडवाणी जी जीवन भर उदार हिन्दुत्व के पक्षधर रहे। जिन्ना के संबंध में पाकिस्तान में की गई टिप्पणी ने उग्र हिन्दुत्व से बहुत दूर कर दिया किन्तु उन्होंने अपने कहे शब्द वापस नही लिये। अडवाणी जी अपने राजनैतिक जीवन में, इस बात को भूल गये कि उग्रवाद हमेशा व्यवहार करो और फेकों की बात पर विश्वास करता है। चाहे हिन्दु उग्रवाद हो या इस्लामिक या कोई अन्य। उग्रवादी नेतृत्व कभी भावनाओं से काम नहीं करता, मानवीय संवेदनाओं से शून्य होता है और उचित एवं अनुचित की परिभाषा स्वयं बनाता है और तदनुसार ही दूसरे के साथ व्यवहार करता है, चाहे वह व्यवहार कितना भी नकली क्यों न हो। अटल जी के किनारे होते ही उग्रवादी हिन्दुत्व को अडवाणी जी जैसे उदारवादी को किनारे करने में कोई असुविधा नहीं थी। सिर्फ यदि कोई अभाव था तो एक विकल्प के नेतृत्व का जो नरेन्द्र मोदी ने पूरा कर दिया।

नरेन्द्र मोदी कभी न उग्रवादी विचारों के रहे और न हीं उदारवादी विचारो के । उनकी गिनती सफल कुटनीतिज्ञ के रूप में की जाती है। प्रारम्भ में उन्होंने गुजरात में इस्लामिक उग्रवाद को जिस कुशलता से सबक सिखाया तथा धीरे–धीरे मुसलमानों मे अपनी उदारवादी छवि बनाने की कोशिश की, वह उनकी एक अलग छाप स्थापित करती है। नरेन्द्र मोदी ने हिन्दुत्व से आगे बढ़ कर विकास पुरूष सिद्ध होने की सफल छलांग लगाई, वह भी उनके कुशल राजनीतिज्ञ होने का प्रमाण है। मोदी जी ने कभी न संघ की परवाह की और न विश्व हिन्दु–परिषद की तथा इन सबों को अपने पीछे चलने के लिए मजबूर किया। संघ परिवार मोदी से बहुत नाराज था किन्तु उग्र हिन्दुत्व को और बढ़ने के लिए कुशल राजनेता की आवश्यकता थी दूसरी ओर नरेन्द्र मोदी उग्र हिन्दुत्व के पक्षधर न होते हुए भी राजनैतिक ऊॅंच पद पाने के लिए संघ परिवार के साथ गठजोड़ आवश्यक मानते थे, यही कारण है कि संघ परिवार ने न चाहते हुए भी नरेन्द्र मोदी को अपना राजनैतिक हीरो बना दिया तथा नरेन्द्र मोदी ने न चाहते हुए भी उदारवादी हिन्दुत्व के विचार में तिलांजली दे दी। इस तरह उग्र हिन्दूत्व तथा कूटनीति के नापाक गठबंधन का परिणाम है भारतीय जनता पार्टी की नई राजनीति ।

स्पष्ट है कि भाजपा में अटल–अडवाणी युग समाप्त हो गया है और इनके साथ–साथ ही भाजपा में उदारवादी हिन्दुत्व भी पूरी तरह समाप्त हो गया है। अब भारतीय जनता पार्टी उग्रवादी हिन्दुत्व के मार्ग पर सरपट दौड़ेगी जिसे नरेन्द्र मोदी का नेतृत्व मिलेगा और संघ परिवार का मार्ग दर्शन। स्पष्ट है कि 2014 का आम चुनाव न विकास के मुद्दे पर होगा न महंगाई और भ्रष्टाचार की कोई चर्चा होगी। अगला आम चुनाव उग्र हिन्दुत्व बनाम उदारवाद के मुद्दे पर स्पष्ट दिखता है। क्योंकि संघ परिवार और नरेन्द्र मोदी के मिलन के बाद इसके अतिरिक्त कोई अन्य सम्भावना नहीं दिखती, खास कर अडवाणी के पतन के बाद तो अब अन्य कोई मार्ग दिखता ही नहीं है। 2014 के चुनावों में उग्र हिन्दुत्व का उदारवाद से जो भयंकर राजनैतिक युद्ध होगा उसकी किसी तरह की भविष्य वाणी करना कठिन है। विश्व युद्ध के समय भी हिटलर और मुसौलीनी की सफलता–असफलता की भविष्य वाणी करना आसान नही था और नहीं माओत्सेतुंग के समय भविष्य वाणी करना आसान था। वर्तमान समय में भी लगातार परिस्थितियॉं बदल सकती है। यदि उग्रवादी मुसलमानों ने बहुत आगे आकर मोदी का एक पक्षीय विरोध किया तो ध्रुवीकरण हिन्दू और गैर हिन्दू के बीच भी हो सकता है किन्तु यदि उग्रवादी हिन्दुओं द्वारा ज्यादा उछल कूद की गई तो ध्रुवीकरण उग्रवादी हिन्दुत्व के विरूद्ध भी हो सकता है। स्पष्ट है कि लाल कृष्ण अडवाणी के घर पर उग्रवादी हिन्दुओं के प्रदर्शन को भी सामान्य नागरिकों ने बुरा माना है तथा मोदी समर्थकों द्वारा भाजपा की कार्यकारणी बैठक में शालीनता छोड़ कर दबाव बनाना भी बुरा माना गया। अभी भारत की जनता उग्रवाद के पीछे–पीछे चलना शुरू कर दे ऐसा मुझे नही दिखता। मुझे तो दिखता है कि संघ परिवार नरेन्द्र मोदी का नेतृत्व पाकर अपनी सीमायें तोड़ेगा और उदारवादी धडे को यह कहने का अवसर देगा कि भारतीय राजनैतिक को हिटलर मुसोलिन माओत्सेतुंग जैसे विचारों से बचाने की आवश्यकता है।

मैं नहीं कह सकता कि भविष्य क्या होगा किन्तु मैं उदारवादी हिन्दुत्व के पक्ष में अपनी शुभकामनाऍं ही दे सकता हूॅं।

आजम खान का अपमान और अमेरिका

उत्तर प्रदेश के एक मंत्री आजमखान मुख्यमंत्री अखिलेश यादव के साथ किसी यूनिवर्सिटी के आमंत्रण पर भाषण देने अमेरिका गये थे। विदित हो कि अमेरिका में बाहर से आने वाले मुसलमानों की कुछ विशेष छानबीन होती रहती है और यदि आपके नाम के साथ खान जुड़ा हो तो छानबीन कुछ ज्यादा ही होती है। अमेरिका अपनी सतर्कता के साथ कोई समझौता कभी नहीं करता। अमेरिका इस मामले में किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करता। यदि आप मुसलमान हैं तो चाहे आप कोई भी क्यों न हों, आपको विशेष सतर्कता से गुजरना ही होगा और यदि आपके साथ खान जुड़ा है तो चाहे आप कितने भी तीस मार खां हों, आपको कोई विशेष रियासत नहीं मिल सकती। अमेरिका अपनी ऐसी सतर्कता के लिये प्रशंसा का पात्र हैं। दुर्भाग्य से हमारे बड़बोले और घमण्डी मंत्री आजमखान ने अमेरिका की इस सतर्कता की प्रशंसा करने की जगह नाराजगी व्यक्त करके देश के गौरव को ठेस पहुंचाई।

आजम भाई को जाने के पूर्व ही समझ लेना चाहिये था कि वे भारत भ्रमण पर न होकर अमेरिका जा रहे हैं। भारत में तो आप अपने संगठित होने के नाम पर मुसलमान होने का भरपूर लाभ उठाते हैं क्योंकि भाजपा को छोड़ कर हर राजनैतिक दल आपकी नाराजगी से डरता है। किन्तु अमेरिका को आपकी नाराजगी की कोई परवाह नहीं। वह तो राजनैतिक जोड़ तोड़ की अपेक्षा सतर्कता को ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। विचारणीय प्रश्न यह है कि आप अमेरिका जाने के पूर्व क्या यह नही जानते थे कि वहॉ खान शब्द कितना संवेदन शील है। आप कैसे समझ गये कि शाहरूख सलमान के बाद अन्य खानों के लिये अमेरिका ने नियम बदल दिये होंगे। कई वर्ष पूर्व केन्द्रीय मंत्री जार्ज फर्नान्डीस तक को सुरक्षा के मामले में कोई रियायत नहीं मिली थी। यहॉ तक कि कई बार तो प्रधानमंत्री तक ऐसी विशेष जांच से गुजरते हैं और ऐसे समान व्यवहार की तारीफ करते हैं। किन्तु आपने अमेरिका को उत्तर प्रदेश समझने की भूल कर दी।

आम तौर पर स्वाभाविक रूप से मुसलमान अमेरिका से चिढ़ता है। इस बात को समझते हुए भी आप जैसे लोग अमेरिका जाने के लिये इतने लालायित क्यों रहते हैं? अमेरिका ने यदि किसी साधारण से कार्य के लिये आमंत्रित कर दिया तो आप लोग सारी दुनिया में ऐसा ढिंढोरा पीटते हैं जैसे कि स्वर्ग का आमंत्रण आ गया। स्पष्ट है कि आप लोग अमेरिका जाना भारत के लोगों पर रोब जमाने का अच्छा प्रमाण पत्र मानते हैं। यदि इसी तरह अमेरिका जाने के लिये लार टपकती है तो फिर इस छोटी सी बात का बतंगड़ क्यों? आप भारत में एक मंत्री होने के अलावा ऐसी क्या विशेषता रखते हैं कि अमेरिका आप पर विशेष विश्वास करे? आप उत्तर प्रदेश में भी साम्प्रदायिक ही माने जाते हैं जो हर जगह मुसलमान होने की अकड़ दिखाते हैं। जब आप भारत में भी रहकर पहले मुसलमान नेता हैं तब भारतीय तो अमेरिका ने तो आपके साथ ठीक ही व्यवहार किया है। कुछ वर्ष पूर्व जब अमेरिका शीत युद्ध में संलग्न था तब आपकी नाराजगी की उसे ज्यादा चिन्ता थी। अब अमेरिका एक ध्रुवीय विश्व का नेतृत्व कर रहा है। अब उसे आपकी नाराजगी की विशेष परवाह नहीं। फिर अमेरिका भी तो जानता है कि आप जैसे लोगों को भारत की जनता कितना धर्मनिरपेक्ष मानती है। भारत और अमेरिका आज भी समान स्तर पर नहीं। भारत के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी किसी अमेरिकी सांसद का प्रमाण पत्र प्राप्त हो जाने की अपनी योग्यता का ही प्रमाण पत्र मानने की तिकड़म करते हैं तो आपको यथार्थ समझना चाहिये कि भारत और अमेरिका के बीच दूरी घटने के बाद भी अमेरिका हमसे बहुत आगे है। हमें अमेरिका से समान व्यवहार की उम्मीद करना हमारी मूर्खता के अलावा और कुछ नहीं। बात बात में अमेरिकन विद्वानों के उद्धरण देने वाले भारतीय इस तरह अनावश्यक घटनाओं को तूल दें तो हम भारत वासियों को आप जैसों की नासमझी से शर्म महसूस करनी पड़ती है।

भारत सरकार को चाहिये कि भविष्य में अमेरिका जाने वाले अपने घमण्डी नेताओं को ट्रेनिंग देकर भेजें कि उन्हें वहॉ के नियम कानूनों को पालन करने की शालीनता दिखानी होगी। यदि कोई मुसलमान और वह भी खान जावे तो विशेष ट्रेनिंग देनी चाहिये क्योंकि बार बार की ऐसी घटनाऍ हर भारतीय को दुख पहुंचाती है। ऐसी स्थितियां ही पैदा न हों यह अमेरिका ही नहीं, भारत भी सतर्कता बरते।

1 श्री अविनाश भाई वाराणसी

आप की पुस्तक भावी भारत का संविधान और उसकी विस्तृत विवेचना मैंने पढ़ी है। मेरे मन में कुछ संदेह है, तथा कुछ प्रश्न भी उभरे है, उसका उत्तर देने की कृपा करें।

1 आपने सम्पत्ति को मौलिक अधिकार माना है । इसको मेरे ख्याल से दो तरह से देखा जा सकता है । यदि उसे हम ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक अधिकार माने तो आज के पूंजीवादी समाज के सम्बद्ध विभिन्न कानूनो के अन्तर्गत जायज ढंग से बनाई गई सम्पत्ति को भी प्राकृतिक अधिकार नही माना जा सकता , क्योकि उसमे समाज के अनगिनत लोगो का हाथ लगता है। न्याय की दृष्टि से ऐसी सम्पत्ति समाज की ही है। ईश्वरीय न्याय इसे मौलिक अधिकार स्वीकार नही कर सकता है। वह मौलिक तभी हो सकता है जब व्यक्ति अकेला ही हाथ हो या पारिवार के सदस्यो का सामूहिक ढंग से हाथ लगा हो, बिना मशीनों, टैक्टर या मजदूरो का सहारा लिये।

मुझें ध्यान है कि जब मै शाहजहापुर उ0प्र0 मे रहते हुए एक बार संयुक्त सोशलिष्ट पार्टी का संयुक्त सचिव था तो मैने उनका घोषणा पत्र पढा । उसमे लिखा था कि एक व्यक्ति अपने हल बैल के एक जोडी से बिना मजदूर और बिना मशीन के जितना जमीन जोत सकता है वही उसका होनी चाहिये। न्याय की दृष्टि से मुझे यह ठीक लगा। सम्बद्ध कानूनो के तहत जायज ढंग से बनाई गई सम्पत्ति संविधान प्रदत्त अधिकार तो हो सकती है, प्रकृत्ति प्रदत्त नही। अपनी राय लिखे।

2 उपरोक्त ढंग से जायज तरह से कमाई गई सम्पत्ति आज के संविधान मे मूल अधिकार नहीं है इन्दिरा जी ने निकाल दिया था, लेकिन इसके निकल जाने से भी सम्पत्ति वालो को नुकसान क्या हुआ? वे सभी मन चाहे ढंग से सम्पत्ति का गैरवाजिब भोग तो कर ही रहे है । मनमाना भोग कर रहे है। जैसे वैभव से भरा करोडो आरबो रूपयो की शादिया आदि।

3 शिक्षा और स्वास्थ आज लाभ कमाने का धंधा सा बन गया है। देशी विदेशी निजी कम्पनियो या समूहो के लिये ऐसी आवाज रामानुजगंज के सम्मेलन मे कुछ लोगो ने उठाई थी और कुछ दुसरो ने सरकार के पास रहने को ठीक माना था । लेकिन बाद मे लोगो ने यह कहा कि पंचायत के माध्यम से इस का देखा जाना ज्यादा ठीक होगा। आप निजी कम्पनीयो द्वारा भले ही वे अनाप सनाप लाभ कमाती हो, इस आर्थिक खर्च को आर्थिक अकेन्द्रीयकरण की श्रेणी मे रखते है। राज्य के मुकाबले यह फिर भी ठीक है। लेकिन मेरा मानना है कि यह सही दिशा मे आर्थिक अकेन्द्रीयकरण नही है। मेरी समझ मे सही दिशा मे वह तब होगा जब गांव एक समुदाय के रूप मे सभी आर्थिक चुभती जरूरतो पर विचार करेगा और उसके निर्णयानुसार ही सभी समूह कार्य कर सकेंगे। हो सकता है पंचायत इन कामों को स्वयं करे या निजी समूहो का लाभ गांव के नियन्त्रण मे रखे। जब राजनीतिक अकेन्द्रीयकरण मे गांव अंतिम है तो आर्थिक अकेन्द्रीयकरण मे क्यो नही।

4 हर इकाई के ईकाइगत निर्णय से स्वतंत्रता की भी गारंटी ही अपराध नियंत्रण है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि किसी इकाई ने निर्णय किया उसमे कोई बाधा पडी तो राज्य उसे दूर करेगा । यदि मेरा समझना ठीक है तो एक उदाहरण देकर समझाए कि राज्य के ऐसा करने की प्रक्रिया क्या होगी? मैं यह समझ रहा हूँ कि प्रत्येक इकाई को विधायी शक्तियॉ होंगी। यह शक्तियॉ आज सिर्फ केन्द्र तथा प्रदेश को है। जैसे ये ईकाइयॉ कानून बनाती है, और इसे कियान्वित राज्य ही करता है ,वैसें ही जैसे सभी ईकाइयॉ कानून बना सकेंगीं और उसे लागू करना राज्य के तन्त्र का दायित्व होगा ।जैसे केन्द्र तथा प्रदेशों के कानूनों के कियांन्वयन में बाधा डालने पर राज्य उससे निपटेगा । वैसे ही नीचली इकाइयो के बने कानून के क्रियान्वयन मे बाधा आने पर भी। मैं यह भी मान रहा हूँ कि यदि कोई इकाई अपने लोगों की आपस की राय के बातें तय कर लें और शांत ढंग से, आंतरिक ढंग से लागू कर लें ,तो यह ऑपसन तो हर ईकाई के पास रहेगा ही। इसमें अहिंसा से कियान्वयन का नकार नही है।

5 आपके संविधान संशोधन के अंतर्गत वर्तमान निर्देशित सिद्दान्तो Directive Principles का क्या होगा? शायद वे सब हटाने ही पडेंगे । क्योकि वे राज्य के माध्यम से होने के निर्देश है।

6 आपने भावी भारत का संविधान की रूप रेखा तैयार की है लेकिन आप नया संविधान नही बल्कि संविधान संशोधन के लिये कार्य कर रहे है। जाहिर है कि आप के सुझाव वर्तमान संविधान मे संशोधन के नाम पर जोड़े जायेगें। यह सब संविधान संशोधन के नाम पर ही होगा।

7 आप चार मौलिक अधिकार मानते है । इन मौलिक अधिकारो का हनन जिन अपराधो से होता है वे सिर्फ 5 अपराध है । मेरे ख्याल मे चोरी डकैती लूट बलात्कार धोखा धड़ी जालसाजी कमतौल मिलावट आतंकवाद भयभीत करना होगा। चार मौलिक अधिकारो –जीने का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्व निर्णय और सम्पत्ति का अधिकार। मै समझता हूँ कि जीने का अधिकार टूटता है आंतकवाद से भयभीत करने से । अभिव्यक्ति का अधिकार भी इससे टूटता है । सम्पत्ति रखने का अधिकार टूटता है। धोखाधडी जालसाजी से।

मै समझता हूँ कि यदि जीने का अधिकार हो, सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार, तो सब बाते साफ हो जाता है । लेकिन फिर भी आप लिखें कि कमतौल मिलावट से कौन से अधिकार टूटते है। आप संक्षेप मे यह बताने का प्रयास करे । उदाहरण देकर कि किस अपराध से किस अपराध का हनन होता है।

वैसे पाचों अपराध गैर कानूनो कार्य तो है ही क्योकि इन सभी को रोकने के लिये कानून बने हुए हैं।

8 आपने लिखा है कि मात्र 2 प्रतिशत सम्पत्ति कर ही लगेगा। बस वही केन्द्र लेगा । लेकिन दूसरी जगह उर्जा पर भारी कर लगाने की बात भी जोडी हैं तो दो कर होगे। राज्य के लिये एक होगा क्या?

9 आपने '' भावी भारत का संविधान एक समीक्षा'' के 34पृष्ठ के अन्त मे तथा 35वे पृष्ठ के आरंभ मे लिखा है।

चेतना अभियान की सफलता के आधार पर पूरे देश के प्रत्येक लोक सभा क्षेत्र मे ऐसे व्यक्तियो के फार्म भरवाये जायेगे जो स्वराज्य के आधार पर संविधान संशोधन का कार्य करे तथा तीन माह मे ही संशोधन पूरा करके लोक सभा भंग कर दे। ऐसे चुनाव लडने वाले स्वयं चुनाव नही लडेगे । ये लोग न तो अपने क्षेत्र मे प्रचार करेगे और नही खर्च करेगे। किसी अंजान स्थान से फार्म भरे। इस तरह चुनाव जनमत संग्रह का स्वरूप ग्रहण करेगा।

यह अंश बिल्कुल समझ मे नही आ रहा है। लगता है इसे एक सामान्य व्यक्ति को समझाने की दृष्टि से बहुत ही साफ और सरल शब्दो मे पुनः प्रकट करना चाहिये।

मुझे लगता है कि आप संविधान का प्ररूप मे प्रत्येक लोक सभा क्षेत्र मे कुछ खास लोगो को देंगे । वे लोग उसका अध्ययन करेंगे। उन्हे जो भी संशोधन समझाना होगा या या करना होगा वे तीन माह के अंदर कर लेगे। फिर आपके मन्तब्य से ऐसा लगता है कि प्रत्येक लोक सभा क्षेत्र मे संविधान संशाधन का व्यापक वातावरण पैदा हो जायगा । प्रत्येक लोक सभा क्षेत्र मे ऐसा व्यापक वातावरण बनाने मे काफी समय धन और साथियों की जरूरत होगी। वह कैसे होगा। कौन करेगा? धन तो खर्च होगा ही। फिर आपकी बातो से लगता है कि संविधान संशोधन का व्यापक वातावरण प्रत्येक लोक सभा क्षेत्र मे बन जाने पर उस क्षेत्र मे कोई भी अन्जान स्थान से खडा होगा । लोग उसे वोट देंगे ही । उस व्यक्ति का चुनाव लडने हेतु न तो प्रचार करना पडेगा और न ही खर्च करना पडेगा। उन्हे विजयी होना ही है। और वे संसद मे पहुचे कि संविधान को संशोधन हुआ और नयी व्यवस्था के लिये वातावरण बना लेकिन फिर भी चुनाव लडने वालो को न सही। लेकिन आपका विशाल धन कार्यकर्ता शक्ति आप खर्च हो गयी है।

मै तो इस तरह समझा। आप अपने विचार का फिर से साधारण व्यक्ति को समझाने लायक भाषा मे प्रकट करे।

10 सर्व सेंवा संघ ने स्व0 सिद्दराज जी तथा स्व0 ठाकुर दास बंग के नेतृत्व मे दलगत राजनीति की गंदी होड के कारण चुनाव लडने से तो परहेज किया लेकिन वोट देने से नहीं। सविधान संशोधन से या व्यवस्था बदलने से नही। आपका आक्षेप इसके इसके विपरीत है जो ठीक नही है।

यह भी सच नही है कि संर्व सेवा संघ के अंतर्गत ग्राम स्वराज्य वाले ‘‘उपर की सभी इकाइयो से तालमेल की बात नही रख सके है। जे पी की पुस्तक ‘‘लोक स्वराज्य‘‘ और और स्व सिद्दराज जी की पुस्तक वैकल्पिक समाज व्यवस्था मे वह स्पष्ट रूप से प्रकट है। जे पी ने गांव से लेकर संसद तक के लिंक को जोडा है और विधान सभा तथा संसद के डाइरेक्ट चुनावो को व्यर्थ माना है। सीधा चुनाव ग्राम सभा के स्तर पर और उपर के सभा स्तर पर और उपर की सभी इकाइयो के चुनाव इनडाइरेक्ट माने है । इससे चुनाव मे लगने वाला कालाधन व्यर्थ हो जायगा। जे पी ने प्रत्येक इकाई के लिये क्षमता का सिद्वान्त दिया। जिस इकाई से निम्न विषयो के लिये पूरा करने की क्षमता है। वह उस इरादे को मिलना ही चाहिये। शेष उपर की इकाइयो को उनकी क्षमता के अनुसार पर मिलना चाहियें। इस तरह केन्द्र के लिये उन्होने ही सिर्फ 5–7 विषय ही लेने का विचार रखा। विनोबा का ग्राम स्वराज्य का विचार अकेन्द्रीयकरण का विचार है। यह शब्द उन्ही का है। उनके अनुसार भी ग्राम सभा ही न कि संसद सवसे पहले , जो भी विषय वह लेना चाहे ले लेगी। शेष क्रमशः उपर के इकाइयो से लेना से जाने देंगी। जे पी ने इस अकेन्द्रीयकरण को नीचे से विकेन्द्रीयकरण का नाम दिया । हॉ विनोबा ने जानबूझकर व्यक्ति और परिवार के स्वराज्य पर इसलिए ध्यान नही दिया क्योंकि पूर्ण लोकतंत्र सिर्फ गॉव की इकाई मे ही हो सकता था।

अब आज आप तथा अनेक विचारक जीवन विद्या शिविर ,के विचारक ,व्यक्ति के स्वराज्य परिवार के स्वराज्य की बात भी रख रहें हैं यह स्वागत योग्य है। लेकिन हरेक के स्टाइल तथा विचार अलग –अलग है तो भी व्यक्ति और परिवार के बारे में सोचना शुभ है।क्योंकि उससे लोकस्वराज्य ही ज्यादा मजबूत होगा।

(11)– आपने अपनी पुस्तक भारत का भावी संविधान पर समीक्षा पिछले वर्ष Decemhe 2012वितरित की मुझें तो Decemhe 2012 में ही मिली। उसमें अनेक स्थानों पर पुरानी तारीखों अक्टूबर 1999 का उल्लेख है। वर्ष1999 तक अतिंम प्रारूप बनना कठिन नही लगता ।अब तक के आंकलन के अनुसार 2005 तक सफलता के लिये आवश्यक जनमत खड़ा हो जायेगा –ऐसा उल्लेख ऐसा तारिखों का बार–बार आया है।जबकि पुस्तक का उद्घाटन करने Recently वितरित किया जा रहा है। जॅचवा लेंगें तो ठीक होगा।

(12)– आप जिस चौथी नई व्यवस्था का बात कर रहें है। वह स्वागत योग्य है। हम और आप यह तो स्वीकार करेंगें ही कि हम लोगों ने जो क्रीम निकाला उसके लिये दूध गॉधी विनोबा जे0पी0का ही था। नयी व्यवस्था का भी पूरा उल्लेख उसमें है। आप ने उसमें कुछ संशोधन करवा लिया है। वह तो अतिरिक्त है। किसी को किसी विचार का नकल ग्रहण करना चाहिए । उसे पढ़ें जरूर ,लेकिन ले वही जिसमें विस्तार होता हो ,यह वैज्ञानिक तरिका है,जो आपका भी है,मेरा भी।

(13)–लगता है आपने नया व्यवस्था में विधान सभा को हटा दिया हैं। मुझे कुछ आपत्ति नही है।

(14)–मैं समझ रहा हूॅ कि संसद उन 5 विभागों के बारें में ही कानून बनायेगी। अन्य इकाईयों में उसका कोई हस्तक्षेप नही होगा, क्योंकि वे समाज संचालित होंगें ,राज्य संचालित नही ,अब इन 5 विभागों में हजारो ,लाखों लोग काम करते है, तरह –तरह की समस्याएॅ होंगी। उन सब पर ,वेतन आदि पर प्रस्ताव तथा नियम बनायेंगा। राज्य के अर्न्तगत ही राष्टपति ,उपराष्टपति ,प्रधानत्री ,मंत्री आदि आते है,उन सब के बारे में तय करना संसद का काम होगा । या उन राज्य के लिये सारे कानून –नियम –प्रस्ताव आदि वह बनायेगा।मैं आपके नजरिये को समझा या नही।

उत्तर–(1) व्यक्ति श्रम और बुद्धि का उपयोग करता है किन्तु वह अपने श्रम और बुद्धि को किसी अन्य समय में उपयोग करने के लिए संचित नही कर सकता। श्रम और बुद्धि का रूपान्तरण ही धन सम्पत्ति कहा जाता है। व्यक्ति 8 घंटा काम करता है और 16 घंटा आराम करता है, अथवा 40 वर्ष तक काम करता है और बुढ़ापे में आराम करता है। इन सबकी ठीक व्यवस्था के लिए श्रम और बुद्धि के रूप में रूपान्तरण ही उचित माना गया है। इस प्रकार व्यक्ति की श्रम और बुद्धि के रूपांतरण धन को उसका मूल अधिकार मानना चाहिए। मूल अधिकार का अर्थ होता है कि व्यक्ति के उस अबाध अधिकार में राज्य अथवा समाज बिना उसकी सहमति के कोई कटौती नही कर सकें। यदि इसे मूल अधिकार से निकाल दिया गया तो राज्य अथवा समाज इसे कभी भी किसी रुप में छीन सकता है दुनियॉ के साम्यवादी समाजवादी तानाशाह देशों में सम्पत्ति को मूल अधिकार नही माना गया है किन्तु अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में सम्पत्ति व्यक्ति का मूल अधिकार है। भारत में भी जब संविधान बना तो लोकतांत्रिक देशों की नकल कर के सम्पत्ति कों मूल अधिकार घोषित किया गया किन्तु जब भारत में इंदिरा गॉधी तानाशाह के रुप में स्थापित होने लगी तब उन्होंने सम्पत्ति को मूल अधिकार से निकाल दिया। मेरे विचार से आपातकाल समाप्त होते ही सम्पत्ति को फिर से मूल अधिकार में शामिल कर लेना चाहिए था किन्तु नई राजनैतिक व्यवस्था ने संविधान संशोधन करने की अपेक्षा व्यावहारिक रुप में सम्पत्ति को मूल अधिकार के समान मानना शुरु कर दिया जैसा कि आपने भी अपने प्रश्न में लिखा है। सम्पत्ति को यदि स्वतंत्र अधिकार नही दिया गया तो समाज में प्रतिस्पर्धा पर बुरा असर पड़ेगा जैसा कि साम्यवादी देशों में देखने को मिला। जो प्राकृतिक संसाधन है चाहे जल हो, हवा हो या अन्य कोई और सब पर प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है। कोई भी किसी मनुष्य को उसकी सहमति के बिना इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकता। जंगल और जमीन में इस प्राकृतिक संसाधन अधिक होगा और उपयोगिता जब तो किसी प्रकार के नियमन की आवश्यकता नहीं पड़ती है किन्तु जब प्राकृतिक संसाधन घटते जायें और उपयोग करने वालों की संख्या बढ़ती जाए तब सब के सहमति से प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का नियमन करने की आवश्यकता होती है, जैसा कि वर्तमान में हो रहा है। यद्यपि यह मान्य सिद्धान्त है कि सरकार सभी नागरिकों का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु भारत में बिना नागरिकों के सहमति के ही एक सरकार बन गई और उसमें नियमन करना शुरू कर दिया, यह एक अलग बात है कि नियमन करने वाली इकाई उपभोक्ताओं की सहमति से नही बनी, किन्तु यह भी सच है कि ऐसी इकाई भारत में पिछले 65 वर्षों से सफलता पूर्वक काम कर रही हैं। यह सच है कि सभी प्राकृतिक संसाधनों पर सब का समान अधिकार है, किन्तु यह भी सच है, प्रत्येक व्यक्ति को अपने संसाधन के रूपान्तरण करने का भी स्वतंत्र अधिकार है। जिसे हम क्रय विक्रय कहते हैं। यदि किसी प्राकृतिक संसाधन को किसी पूंजीपति को बेचकर उसके बदले

में प्राप्त धन आम लोगों को सस्ता अनाज दिलाने में लगाया गया तो इसे तब तक गलत नहीं कहा जा सकता यदि तक उसमें कोई भ्रष्टाचार न हो या नियत की खराबी न हो। इस तरह प्राकृतिक संसाधनों पर विधिवत् बनी हुई सामाजिक इकाई के क्रय विक्रय को उस सामाजिक इकाई के माध्यम से रोका जा सकता है, किन्तु पूंजीपति पर कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता।

(3) सम्पत्ति पर कोई सीमा रेखा बनाने की मांग करने वाले अधिकारों की सीमा रेखा पर चुप हो जाते हैं। सम्पत्ति का नियमन करने वाली इकाई के पास अधिकारों का बढ़ना निश्चित हैं। उन अधिकारों का बढ़ना सम्पत्ति की अपेक्षा अधिक ज्यादा खतरनाक है। यदि अधिकारों की असमानता भी घटे और सम्पत्ति का भी नियमन हो तो ठीक है, अन्यथा सहमति के नियमन के नाम सरकारों को अधिक अधिकार देते जाना गलत है। मेरा विचार है कि परिवार और ग्राम सभा को अधिकारों के वितरण के साथ–साथ सम्पत्ति के नियमन के भी अधिकार दे दिये जाए तो आर्दश स्थिति बन सकती है।

(4) शिक्षा और स्वास्थ के अकेन्द्रिकरण पर मेरा और आप का विचार एक है। मेरा भी मानना है कि सरकार ऐसे आर्थिक मुद्दों से पूरी तरह दूर हो जायें तथा समाज यह काम परिवारों, गांवों या गांवों से उपर की इकाइयों को सौंप दें, उसमें राज्य से जुड़ी किसी इकाई का कोई हस्तक्षेप न हो। इकाईगत कानून से मेरा आशय है कि प्रत्येक इकाई अपने आन्तरिक नियम कानून बनाने और उन्हें लागू करने से स्वतंत्र होगी, किन्तु ऐसा कानून किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों से संबंधित नहीं होगा और नहीं किसी अन्य इकाई के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करेगा। इकाईयों के निर्णयो को लागू कराना इकाई का दायित्व हो राज्यो का नही।

(5) निदेशक सिद्धान्त कभी संविधान के भाग नहीं हो सकते। संविधान तो राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमायें निश्चित करने वाला दस्तावेज होता है। संविधान कभी समाज के दायित्व की चर्चा नहीं कर सकता क्योंकि वह संविधान की सीमा रेखा के बाहर है।

(6) यह सही है कि संविधान में व्यापक संशोधन के सुझाव हैं और यह व्यापक परिवर्तन संविधान के संशोधन पर ही किया जायेगा।

(7) मेरे विचार से कम तोल और मिलावट, जालसाजी और धोखधड़ी के भाग है। जो सम्पत्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन माना जायेगा।

(8) मैंने 2% सम्पत्ति कर तथा कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल वृद्धि को सिफारिश की है। इस तरह दो प्रकार के कर हुयें जो दोनों केन्द्र सरकार के ही होगें। प्रदेश सरकार तो रहेगी ही नही। ये कर लगाने का उद्देश्य है कि सम्पूर्ण अबादी को एक निश्चित राशि प्रतिमाह प्रतिवर्ष, जीवन भत्ता के रूप में उपलब्ध करायी जा सके। कृत्रिम ऊर्जा की मूल वृद्धि का मुख्य उद्देश्य है आर्थिक असमानता को कम करना तथा श्रम का मूल्य और मांग का बढ़ाना। यह मूल्यवृद्धि तो सिर्फ एक बार होगी। अतः उसे टैक्स कहना उचित नहीं है फिर भी अगर दो टैक्स मान लें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

(9) मेरा आशय भावी भारत का संविधान एक समीक्षा पृष्ट 35 पर जो लिखा है उसका आशय यह है कि कोई एक व्यक्ति या विचार धारा पूरे देश में, इस तरह मजबूती से प्रचारित हो जायें कि चुनावों में हर लोक सभा क्षेत्र में उस व्यक्ति के या विचार धारा के नाम पर ही चुनाव हो। इस प्रयोग का आंशिक प्रभाव जय प्रकाश आन्दोलन में भी दिखा था, अन्ना के आन्दोलन में ऐसी सम्भावना बन रही थी जो बनते–बनते टूट गई। यदि पूरे देश में किसी एक व्यक्ति या विचार के नाम पर चुनाव हो जाये और उस व्यक्ति या विचार के नाम पर पूरे देश में बड़ी मात्रा में लोग जीतकर संसद में चले जायें तो संविधान संशोधन करके लोक सभा को भंग कर देना, एक उचित मार्ग होगा। यद्यपि ऐसी सम्भावना आज नहीं दिखती है किन्तु परिस्थितियॉ तो सम्भावना के सच के साथ ही बनती बिगड़ती है। आप ने जो समझा है वह ठीक है। अभी तो मेरी बाते हवाई ही है। यदि अन्ना, अरविन्द धैर्य रखते तो सच भी हो सकती थी और यदि लोक संसद के मुद्दे को केन्द्र में रख कर, कोई नया अन्ना खड़ा हो जाये तो 2019 में भी परिणाम दिख सकते हैं।

(10) मैंने संविधान का जो भी प्रारूप तैयार किया है, उसकी अधिकांश बातें गांधी विनोबा, जयप्रकाश, सिद्धराज ढडढा, ठाकुर दास बंग आदि से ली गई है। मैं तो यह महसूस करता हूँ कि सर्व सेवा संघ लोक स्वराज्य के मुद्दे से भटक कर ग्राम सुधार की दिशा में चला गया जो उपरोक्त पुरूषों की लाईन नही थी। समाज सुधार तो ग्राम स्वराज्य, लोक स्वराज्य के बाद का कार्य है न कि पूर्व का । मैंने और बंग जी, सिद्धराज जी ने मिल कर सर्व सेवा संघ के कार्यकर्ताओं को भरसक यह बात समझाने का प्रयास किया लेकिन पता नहीं क्यों ये मानने को तैयार नहीं है। अभी भी मैं मानता हूँ कि लोक स्वराज्य, ग्राम स्वराज्य प्रत्येक इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता लिये बिना, समाज सुधार, ग्राम सुधार के सारे कार्य गांधी विचारों के विपरीत हैं।

(11) भावी भारत का संविधान एक समीक्षा की पुस्तक लगभग बीस वर्ष पूर्व की लिखी हुई है और उनके नये संस्करणों में भी बिना शब्द बदले उसी तरह छपा है इस लिए आप इसे 15–20 वर्ष पूर्व के सन्दर्भ से जोड़ कर पढ़ियेगा।

(12) मैंने संविधान का स्वरूप बनाया है। संविधान के अन्तर्गत नियम कानून पर अधिक कुछ सोचा है इस लिए मैंने इस पुस्तक में नियम कानून का जिक्र नहीं किया है। अगर आवश्यकता पड़ी तो मिल कर विचार कर लेगें।

2 श्री अविनाश भाई वाराणसी

विचार :–

रामानुज गंज के, रामानुजगंज को केन्द्र बना कर 130 गॉवों में लोक स्वराज्य के लिए आप साथियों की टीम कार्य कर रही है वह प्रशंसनीय है। वैसे तो वर्तमान राजनैतिक सामाजिक वातावरण में यह कार्य असम्भव सा दिखता है किन्तु इस के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग भी नहीं है। इसलिए इस कार्य को करना तो होगा ही भले ही इस पीढ़ी द्वारा शुरू किया गया लोक स्वराज्य का काम हमारे बाद अगली पीढ़ी पूरा करें।

मैं आपके क्षेत्र में आकर्षित इसलिये हुआ क्योंकि मुझे साकार होते हुए ग्राम स्वराज्य के क्षेत्र को देखने का तमन्ना थी, क्योंकि मैंने पिछले 35–40 वर्षों की अवधि में मेरा कल्पना के लोक स्वराज्य – ग्राम स्वराज्य को पनपते देश में कही नहीं देखा था, हालॉकि देश में न जाने कितने क्षेत्र ग्राम स्वराज्य के नाम पर नाम कर रहे हैं और घोषित कर रहे हैं कि वह ग्राम स्वराज्य ही है।

आपने एक बार कहा कि उस समय ग्राम स्वराज्य इस लिये नहीं पनप सका, क्योंकि ग्राम सभा को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था। मुझे लगा कि शायद ऐसा ही हो। लेकिन हम देखते हैं कि संविधान के तहत अनेक अच्छे कानून बने हैं, और हमने उ0प्र0 के अनेक क्षेत्रों में देखा कि Ngo ने वैसे कानूनों की समुचित जानकारी वहॉ के कमजोर तबके के लोगों को दी थी। वह Ngo था ही उसके लिये। हमने पूछा उनसे और पाया कि लोगों से प्रायः सारे कानूनों का जानकारी है, लेकिन वे कृति करने में असमर्थ हैं। हमने पूछा, ‘‘क्यों?‘‘ उत्तर मिला, ‘‘साहस नहीं है, डर लगता है, हमारे कुछ साथियों ने हमारे बीच से नेतृत्व भी किया, लेकिन जिस वर्ग को नुकसान होने वाला था, उसने कुछ को बुरी तरह से डराया जो नहीं डरे, उन्हें सुविधाएं देकर शान्त कर दिया।‘‘ हमने कहा ‘‘आप सब एक ही वर्ग और एक ही जाति के हो तो मजबूत संगठन, जो किसी का हालत में टूटे नही क्यो नहीं बना सकते? उत्तर मिला ‘‘क्योंकि हम सब एक जैसे होते हुए भी हम में आपस में इतने भेद हैं कि हम एक नहीं हो सकते।‘‘ तो फिर आपका समझ में इलाज क्या है? ‘‘मैंने पूछा उन्होंने कहा, ‘‘आप जब–तब आते रहें, हो सकता है आपके नेतृत्व से हममे एकता आ जाये और कृति का साहस भी‘‘ तो यह डर और प्रलोभन (लालच) सभी तरह के अच्छे कामों को रोक रहा है। समुदाय कैसे बने, इन दो बातों से ऊपर कैसे उठे, यह सवालों का सवाल तो बाकि रह ही जाता है। आपके आदिवासी क्षेत्रों में भी कम या ज्यादा यही दिखा।

मेरी समझ में तो लोकस्वराज्य, ग्राम स्वराज्य या अभी ग्राम सभा ही कहें, उसका अत्यन्त प्राथमिक काम या कसौटी तो यही हो सकती है कि वे अपनी पहल पर, मोटे रूप में, महीने में एक बार (सरपंच द्वारा बुलाया जाने वाला 6 महीने या 3 महीने का अवधि की सभा का बात छोड़ दें, क्योंकि वह अभी अपने हाथ में नहीं है) मिल कर बैठ सकें, और स्वः निर्णय के अन्तर्गत जो कुछ उन्हें अच्छा लगे, उस अनुसार सोचें प्रस्ताव करें, रजिस्टर रखें सभी के हस्ताक्षर या अंगूठे के निशान लें, और मिलकर गांव के लिये कुछ कृति करें। यह तो आप भी मानते हैं कि ग्राम स्वराज्य जिस चीज का नाम है वह वस्तुये, सेवाएं आदि सरकार से मांगने से नहीं, बल्कि आपस में मिलकर गांव का कुछ भी सेवा करने का नाम है और इसी शक्ति से सरकार से भी वाजिव हक मिलने की शक्ति प्राप्त होती है, आपस की एकता से डर और लालच पर भी लगाम लगता है।

देश भर में 35–40 वर्षों से घूम–घूम कर देखे कथित ग्राम स्वराज्य के विपरीत, सही ग्राम स्वराज्य का रूप या ग्राम सभा का स्वयं स्फूर्त संचालक देख पाने का मेरा आशा आपके क्षेत्र में पिछले 35–40 साल के अनुभवों से ज्यादा बलवान है क्योंकि आप जैसा एक साथी अपना सुध–बुध खोकर, चिन्तन – मनन के गहन तय एवं निष्कर्षों के आधार पर अपना ही दौलत का फूँकते हुए, इस पवित्र काम में लगा है, एक Network बना डाला है, नीचे से ग्राम सभा सशक्तिकरण के लिये वातावरण बनाने का धुन में मग्न है और यह लोक स्वराज्य पनप सके, इसके लिये ऊपर के स्तरों पर भारतीय संविधान संशोधन के प्राप्त लोगों को जागृत करने नई समाज व्यवस्था बनाने के लिये बेचैन है।

(1) आपके गांवों की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए, कि गांव लम्बे–चौड़े क्षेत्र में है, आकार बहुत बड़ा है, आबादी कम है, रास्ते में जंगल, पहाड़, ऊंचाई–निचाई है, मेरे मुंह से सहज हो एक सुझाव निकल पड़ा था कि गांव को 4 खण्ड़ों में बांट दिया जाये, (तो भी एक खण्ड़ का आबादी 100 बालिगों से कम नहीं होगा), तो लोगों को सभाएं करने, सभाओं का अभ्यास करने में आसान होगी यह सुझाव शुक्ला जी को तथा सभी को मान्य हुआ था और वैसा करने के लिये उन्होंने गांवों में व्याख्यान भी दिये थे। हमें लगता है कि हर बड़े आकार में फैले गांव के लिये, यह जरूरत जैसा है।

(2) पंचायत द्वारा बुलाई जाने वाली बड़ी ग्राम सभी ही सब कुछ है ऐसा नहीं मानना चाहिए। छोटी–छोटी ग्राम सभाएं बनाकर उनके स्वनिर्णय काम करना, यह बडी ग्राम सभा को पटरी पर लाने का एक अच्छा काम हो सकता है।

(3) लाभार्थियों को चिन्हित करने का अच्छा अधिकार शासन ने ग्राम सभा को दिया है। निर्मित की जाने वाली छोटी–छोटी ग्राम सभाओं में यदि वहॉ के युवा साथी ईमानदारी से गांव के लोगों से भी राय करने Survey करते हैं, सूची बना लेते हैं कि वृद्धावस्था में कौन–कौन हैं, विधवा कौन–कौन हैं BPL कार्ड किसे–किसे मिलने हैं, घर बनाने के लिये कर्ज के सही हकदार कौन हैं प्रत्येक व्यक्ति के पास जमीन–जायदाद–मकान–खेती–नौकरी क्या–क्या हैं? हरेक का हैसियत क्या–क्या है, आदि–आदि तो बड़ा ग्राम सभा में इस सूची को प्रस्ताव पास कराकर गांव में न्याय के आधार पर वितरण हरे सकता है। छोटी–छोटी ग्राम सभाएं बनाकर, उनमें रजिस्टर रखकर उपस्थिति के हस्ताक्षर कराकर, यह सब किया जा सकता है।

(4) अनेक ग्राम सभाओं के कुछ उल्लेखनीय कार्य भी किये हैं अब इस के आगे, 130 गांवों में से, ऐसे गांवों को चिन्हित किया जा सकता है, जहॉ पर लोगों ने अपना ग्राम सभाएं, अपने आप करने का शुरूआत की है और उसे रजिस्टर पर दर्ज किया है। भले ही वे गांव 2–4–5–10 हों, लेकिन चिन्हित तो किया ही जाना चाहिए।

(5) क्रमांक (4) के आधार पर जिन गांवों में वैसा सम्भावनाऍ दिखता है, उन्हें भी चिन्हित किया जा सकता है और उन में हमारे आश्रम के साथियों द्वारा विशेष शक्ति लगाई जा सकती है।

(6) विशेषकर क्रमांक 4 एवं 5 से सम्बद्ध गांवों के लोक पंचों, लोक प्रमुखों से मोबाईल नम्बर हमारे रेकड में रहना ही चाहिए।

(7) जिन साथियों से पुरस्कृत किया गया है, उन्हें भी तथा समबद्ध केन्द्र प्रमुखों को भी क्रमांक 4 एवं 5 के गांवों में जाकर समझाने के सार्थक प्रयास करना चाहिए, ऐसा लगता है।

(8) शिविर–सम्मेलन बहुत हुए हैं उनमें शामिल हुए साथियों का नजरिया क्या बना, उनसे मिलकर दूसरा भी रेकड, उनके नजरिये का रेकड रखा जा सकता है। जो सोच उनका बना हो या जो कुछ भी वे कर सके हों, उस आधार पर ही अगले शिविर किये जा सकते हैं।

क्रमांक 4 एवं 5 के गांवों के चिन्हित हो जाने पर आपके शुक्ला जी के या मेरे लिये आसानी हो सकता है। काफी कुछ हुआ है लेकिन अभी बहुत कुछ होना बाकी है, भारतीय संविधान संशोधन के माध्यम से लोक स्वराज्य का भागीरथ पुरूषार्थ शेष है।

मेरा हार्दिक शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

उत्तर–आप का पत्र मिला सुझाव भी मिले। आप जानते ही हैं कि रामानुजगंज का यह लोक स्वराज्य का प्रयोग किसी बनी बनाई लीक पर नहीं चल रहा है, बल्कि इस प्रयोग में लगे, सब साथी मिलकर जो मार्ग उचित सोचते हैं, उस पर चलना शुरू कर देते हैं और यदि बीच में आवश्यकता पड़े तो मिल कर बैठ कर संशोधन भी कर लेते है। गांधी, विनोबा, जय प्रकाश ने लोक स्वराज्य को एक मात्र समाधान बताया, अब हम इसे लक्ष्य मान कर विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से पूरा करने का प्रयास करेगें। आप के सुझाव गम्भीर है। सम्भव है, आवश्यकता यह है हम आप सब बैठकर इस संशोधन पर चलना शुरू कर दें। आप आयेगें तो इस दिशा में बैठकर निर्णय कर लेगें। वैसे अभी भी हम लोग इस दिशा में संशोधन का प्रयास कर रहे हैं। अभी अप्रैल माह में जो बड़ी–बड़ी सभायें हुई है। और जिन्हें हमने खुद भी सम्बोधित किया है। उससे और अधिक सम्भावनायें बनती दिख रही है। कार्य कठिन है किन्तु असम्भव नहीं, ऐसा आप भी मानते हैं मैं भी मानता हूँ और हमारे सब साथी भी मानते हैं।

3 डॉ0 श्री हितेश कुमार शर्मा गणपति भवन, सिविल लाईन्स, बिजनौर (उ.प्र.) – 246701

विचार :– डॉ0 श्री हितेश कुमार शर्मा द्वारा लिखित चार पुस्तके सम्पूर्ण जीवन की कार्यशैली को दर्शाता है, जहां चिन्ता मनुष्य को जकड़े रखती है। कारण अनेकों हो सकते हैं, जिसके लिए प्रजा ही दोषी है, क्योंकि जात–पात, धन के लालच में आकर वैसे व्यक्ति को चुनता है अपने प्रतिनिधि के रूप में भले ही वह दागी हो, घोर कुटनीतिज्ञ हो या बाहुबली हो तो स्पष्ट है कि जब बबूल रोपेंगे तो आम का स्वाद कहां से आयेगा। अतः श्री शर्मा के द्वारा लिखे गये प्रस्ताव के अवलोकन करने के बाद निष्कर्ष निकला, अर्थात् निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिलाने का प्रयास किया है जैसे :–

(1) विचारों में शून्यता की स्थिति

(2) चाटुकारिता, गलत को गलत और सही को सही कहने की ताकत मर चुकी है।

(3) लोकतंत्र समाप्त हो गया है, केवल तंत्र हावी होकर रह गया है और तुष्टिकरण की नीति ने अपना वर्जस्व कायम कर लिया है।

(4) नीचे स्तर से लेकर शीर्ष पर बैठे लोग घोटालों के कार्य को अन्जाम देने में अपना कीमती वक्त बर्बाद कर रहे हैं और निरीह जनता कराह रही है जिसकी सुध लेने वाला कोई नही रह गया है।

(5) देश के सामने दो ही विकल्प शेष बच गया है । या तो देश को कुछ अर्से के लिए प्रजातांत्रिक पद्धति को ध्यान में रखते हुयें शासन का निर्माण हो या आजादी की दूसरी लड़ाई लड़ी जाये।

(6) चुनाव एक धोखा है। नियोजित ढंग से सुख प्राप्त करने का साधन बन कर रह गया है, इसलिए आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता है और ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो कि स्वच्छ व्यक्ति चुन कर विधान मंडलों में बैठें जिन्हें जन हित एवं देशहित का कोई ख्याल हो।

(7) देश बड़े–बड़े पूँजीपतियों के हाथ का खिलौना बन कर रह गया है।

(8) वर्चस्व रूपी दानव हावी हो गया है, और सब लोग कहीं न कहीं अपना वर्चस्व स्थापित करने में आगे निकल जाना चाहते हैं जो दुःखद काम हैं।

(9) कानून कमजोर हो गया है। अपना दायित्व नहीं निर्माण कर पा रहा है जिसके लिए न्याय देने की कुर्सी दी गई है।

यह मेरा विचार है।

उत्तर– आप ने पुस्तकों के माध्यम से भारत में व्याप्त सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं का सजीव चित्रण किया है। आप बधाई के पात्र हैं कि आपने समस्याओं को ठीक ढंग से समझने की कोशिश की है। हम समस्याओं को ठीक ढंग से समझ लेने मात्र से चिन्ता मुक्त नहीं हो सकते। चिन्ता मुक्त होने के लिए तो समस्याओं के समाधान को तलाशने होंगे तथा तलाशे गये समाधान में से अपनी क्षमता का आकलन कर के कुछ करने की शुरूआत करनी होगी। मैंने भी जब अपनी चिन्ताओं का आकलन किया तो मुझे महसूस हुआ कि 95% चिन्तायें तो मेरी नासमझी के कारण भुल से जुड़ी है। अपराध, गैरकानूनी तथा अनैतिक की परिभाषाओं को ठीक से समझा तब मेरी चिन्तायें बहुत सीमित हो गई। इसी तरह जब मैंने समझा कि समाज बड़ा है, राज्य राष्ट्र और सरकार समाज के नीचे है तो मेरी चिन्तायें और भी घट गई। जब मैंने समझा कि समाज मालिक है और सरकार किसी प्रबंधक मात्र है तब मेरी चिन्तायें नाम मात्र पर आकर रूक गई तब मैंने समस्याओं के समाधान पर विचार मंथन किया और परिणाम निकला कि भारतीय संविधान में कुछ संसोधन समस्याओं के समाधान के मार्ग निकाल सकते हैं। मैंने देश भर के अनेक विचारकों से चर्चा कर के प्रस्तावित संविधान का प्रारूप भी बनाया और जब अपनी क्षमता का आकलन किया तब मैंने अपना ध्यान सिर्फ मछली की ऑख की ओर केन्द्रित किया तब पता चला कि यदि लोक संसद के मुद्दे पर

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था को चुनौती देने की शुरूआत की जाए तो समाधान के मार्ग निकल सकते हैं। सितम्बर 2012 में लोक स्वराज्य मंच ने यह कार्य प्रारम्भ किया है और मैं लोक स्वराज्य मंच का समर्थन कर रहा हूॅं।

मैं चाहता हूॅं कि आप जैसे गम्भीर विद्वान समस्याओं के साथ समाधान की भी चर्चा करें और अपनी क्षमता अनुसार सक्रियता का भी लेख करें तो हम जैसे लोग आपको सहयोग समर्थन करने को तैयार है। यदि आप किन्हीं निश्चित योजनाओं पर प्रत्यक्ष चर्चा भी करना चाहे तो मैं ऐसी चर्चाओं में भाग लेने के लिए आने को तैयार हूॅं। प्रश्न समस्याओं से आगे बढ़कर समाधान की ओर जाता है और समाधान से भी आगे बढ़कर वर्तमान परिस्थितियों में अपनी क्षमता के आकलन के साथ भी जुड़ता है।